वीतराग-विज्ञान

वीतराग-विज्ञान ही, तीन लोक में सार।
वीतराग-विज्ञान का , घर-घर होय प्रसार।।

वर्ष : 33 (वीर नि. संवत् - 2540) 373 अंक : 1

काहे को सोचत...

काहे को सोचत अति भारी, रे मन !
पूरब करमनकी थित बांधी, सो तो टरत न टारी।।
सब दरवनिकी तीन काल की, विधि न्यारीकी न्यारी।
केवलज्ञानविषे प्रतिभासी, सो सो ह्वै है सारी।।
काहे को सोचत... ।।१।।

सोच किये बहु बंध बढत है, उपजत है दुख ख्वारी।
चिंता चिता समान बखानी, बुद्धि करत है कारी।।
काहे को सोचत... ।।२।।

रोग सोग उपजत चिन्तातैं, कहौ कौन गुनकारी।
'द्यानत' अनुभव करि शिव पहुँचे, जिन चिन्ता सब जारी।।
काहे को सोचत... ।।३।।

– कविवर पण्डित द्यानतरायजी

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के अवसर पर उनके प्रवचनों में से महत्वपूर्ण 125 अंशों को पाठकों के लाभार्थ यहाँ क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है।

(45) ''शरीर-मन-वाणी से मैं उत्कृष्ट पदार्थ हूँ। शरीर-मन-वाणी को न अपना ज्ञान है और न अन्य पदार्थों का; परन्तु मुझे तो अपना भी ज्ञान है तथा अन्य पदार्थों का भी ज्ञान है। सारे जगत को जानने का मेरा स्वभाव है; अत: मैं सर्वोत्कृष्ट पदार्थ अन्तस्तत्त्व हूँ''- ऐसा मानने में पर की जो अनन्त महिमा थी, वह छूटकर अपनी अनन्त महिमा आती है।

– आत्मधर्म : मई 1980, पृष्ठ 13

(46) धर्म जहाँ होगा, वहीं से आवेगा या कहीं बाहर से? भाई ! तुम्हारा धर्म तुम्हारे आत्मस्वभाव में ही है। तुमसे बाहर कहीं तुम्हारा धर्म नहीं है; इसलिए बाहर से धर्म नहीं आवेगा। अपने आत्मस्वभाव में ही अन्तर्मुख होकर उसमें सम्यग्दर्शनादि धर्म प्राप्त करो। जिसप्रकार रत्नों की खान में से ही रत्न निकलते हैं; उसीप्रकार चैतन्यरत्न की ध्रुव खानि आत्मा है, उसकी गहराई में उतरकर उसमें से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूप रत्न निकालो।

– आत्मधर्म : जून 1980, पृष्ठ 2

(47) आत्मज्ञान के लिए बहुत से शास्त्रों के पढने की बात ही कहाँ है ? तुम्हारी पर्याय दु:ख के कारणों की तरफ झुकती है, उसे सुख के कारणभूत स्वभाव के सन्मुख लगा दो - इतनी सी बात है। स्वयं आत्मा अनन्त-अनन्त गुणसम्पन्न भगवान ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसकी महिमा लाकर स्वसन्मुख हो जावो ! इतनी-सी ही करने योग्य क्रिया है। अपनी पर्याय को द्रव्यसन्मुख लगा दो - बस, आत्मज्ञान का यही मार्ग है।

– आत्मधर्म : जुलाई 1980, पृष्ठ 21

(48) अरे ! तू जैन हुआ, जिनवर के मार्ग में आया और भगवान द्वारा कहे हुए आत्मा का ज्ञान तुझे न हो - ऐसा कैसे हो सकता है ? भगवान ने जो कुछ कहा, वह सब करने का सामर्थ्य तुझमें है। अपनी निज शक्ति को सम्हाले - इतनी ही देर है।

– आत्मधर्म : अगस्त 1980, कवर पृष्ठ 3

(49) चाहे जैसा उच्चप्रकार का भोजन हो; किन्तु जिसे भूख ही नहीं लगी हो, उसे कैसे भायेगा? उसी प्रकार जिसे भव की थकावट का अनुभव नहीं होता तथा आत्मा की भूख नहीं लगी है, उसे तो आत्मा के आनन्द की बात सुनने में भी अच्छी नहीं लगती, उसकी रुचि जागृत नहीं होती; किन्तु जो जीव भवदु:ख से थक गया है, जिसे आत्मशान्ति की तीव्र क्षुधा जागृत हुई है, ...वह आत्मा के आनन्द की यह अपूर्व बात अपूर्व रुचि से श्रवण करके समझ जाता है और उसके भव की थकान उतर

जाती है - उसे आत्मा की अपूर्व शांति का अनुभव होता है। **– आत्मधर्म : सितम्बर 1980, पृष्ठ 2**

(50) जगत में वैभवादि की जो संपत्ति आदि मिलती है, वह सब पूर्वकृत पुण्य का परिणाम है, यह वर्तमान चतुराई या बुद्धि का फल नहीं है। वर्तमान में अनेक काले कारनामे करने वाले भी अच्छी सम्पत्ति प्राप्त कर रहे हैं, अच्छी-अच्छी पदवियाँ प्राप्त कर रहे हैं, किन्तु यह सब पूर्वकृत पुण्य का फल है। अभी जो कुकृत्य कर रहे हैं, सो उनका फल आगामी काल में, इस भव में या अन्य भव में मिलेगा।

– आत्मधर्म : अक्टूबर 1980, पृष्ठ 17

(51) पर्याय में पर्याय का ही वेदन होता है, ध्रुव का वेदन नहीं होता। ध्रुव का अवलम्बन होता है, परन्तु वेदन नहीं होता तथा पर्याय में वेदन होता है, परन्तु पर्याय का अवलम्बन नहीं होता। अवलम्बन ध्रुव का ही होता है और वेदन पर्याय का ही होता है। **– आत्मधर्म : नवम्बर 1980, पृष्ठ 2**

(52) जिसे चैतन्य की महिमा का रस लगा है, उसे बाह्य विषयों का रस टूट गया है। भरत चक्रवर्ती के छियानवें हजार रानियाँ थीं; परन्तु आनन्द के रस की रुचि के सामने कहीं अच्छा नहीं लगता, जगत का कोई पदार्थ सुन्दर नहीं लगता। प्रभु ! सम्यग्दर्शन कोई ऐसी अलौकिक चीज है कि इस अतीन्द्रिय आनन्द के वेदन के सामने सारी दुनिया तुच्छ लगती है, सुन्दर या अच्छी नहीं लगती।

– आत्मधर्म : दिसम्बर 1980, पृष्ठ 19

(53) भाई ! वह (विरोधी) भी कारणपरमात्मा है। पर्याय में भूल है, जो कभी हम सबमें भी अनादि काल से रही है। भूला हुआ प्राणी तो क्षमा का पात्र होता है।

– आत्मधर्म : जनवरी 1981, पृष्ठ 11

(54) ''संसार की कोई शक्ति हमें दिगम्बर धर्म से बाहर नहीं कर सकती। हम दिगम्बर जैन हैं ! दिगम्बर जैन हैं !! दिगम्बर जैन हैं !!! हजार बार दिगम्बर जैन हैं। किसी के कहने मात्र से क्या हम दिगम्बर जैन न रहेंगे ?''

– आत्मधर्म : फरवरी 1981, पृष्ठ 8

(55) आचार्य अत्यंत करुणावंत होते हुए कहते हैं कि रे जड़ ! तुझे तारने वाला रुपया-पैसा नहीं है। यदि तेरे लाखों-करोड़ों रुपयों को गलाकर तुझे पिला दें तो क्या तुझे सुख हो जायेगा या तेरे रुपयों के माध्यम से इन्द्रियों के भोग ला देंगे तो क्या तेरी तृष्णा शान्त हो जायेगी ? इनसे कभी भी तुझे सुख-शान्ति नहीं हो सकती और इस मिथ्याबुद्धि से तेरी अनन्तकाल तक दुर्गति होगी। यदि इन रुपयों को तू दान भी दे दे तो भी तुझे सच्चे धर्म की, अनन्त सुख की प्राप्ति नहीं होगी; अत: इन रुपये-पैसों के स्वामीपने की मान्यता को छोड़ दे और आत्मा के अनुभव का प्रयत्न कर।

– आत्मधर्म : मार्च 1981, पृष्ठ 12

सम्पादकीय

तत्त्वार्थमणिप्रदीप

(आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र की टीका)

(गतांक से आगे)

३. व्यवहारनय – संग्रहनय द्वारा संगृहीत पदार्थों में विधिपूर्वक भेद करना व्यवहार नय है।[१] संग्रहनय के समान यह भी शुद्ध और अशुद्ध के भेद से दो प्रकार का है।

जो संग्रहनय के द्वारा गृहीत शुद्ध अथवा अशुद्ध अर्थ का भेद करता है, वह व्यवहारनय है। अशुद्ध अर्थ का भेद करनेवाले अशुद्ध व्यवहारनय है और शुद्ध अर्थ का भेद करनेवाला शुद्धव्यवहारनय। शुद्धव्यवहारनय को सामान्यव्यवहारनय एवं अशुद्धव्यवहारनय को विशेषव्यवहारनय भी कहते हैं।

महासत्ता की अपेक्षा सभी पदार्थ सन्मात्र हैं, एक हैं, द्रव्य हैं – इस शुद्धसंग्रहनय के विषय को विभाजित करके कहना है कि द्रव्य छह प्रकार के हैं – जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश एवं काल। इसप्रकार भेद करनेवाला व्यवहारनय शुद्धव्यवहारनय है; क्योंकि इसने शुद्धसंग्रहनय के विषय को विभाजित किया है।

अशुद्ध महासत्ता के आधार पर सभी जीवों में एकत्व स्थापित करनेवाले अशुद्धसंग्रहनय के विषयभूत 'जीव' नामक द्रव्य को भी विभाजित करके कहना कि जीव दो प्रकार के होते हैं – संसारी और मुक्त, अशुद्धव्यवहारनय का कार्य है; क्योंकि इस कथन में अशुद्धसंग्रहनय के विषय को विभाजित किया गया है।

अशुद्धव्यवहारनय के माध्यम से किया जानेवाला यह विभाजन निरन्तर तबतक चलता रह सकता है; जबतक कि स्थिति अविभाज्य अंश तक न पहुँच जाये।

यदि व्यवहारनय संग्रहनय के द्वारा संगृहीत पदार्थों को अन्तिम बिन्दु तक विभाजित करता है तो संग्रहनय व्यवहारनय द्वारा विभाजित पदार्थों को उस अन्तिम बिन्दु तक संगृहीत करता है कि जिसमें सम्पूर्ण जगत ही समाहित हो जाता है।

इसप्रकार संग्रह और व्यवहारनय एक-दूसरे के विरुद्ध कार्य करनेवाले होने पर भी एक-दूसरे के पूरक नय हैं। यदि संग्रहनय संधि है, समास है तो व्यवहारनय

१. संग्रहेण गृहीतानामर्थानां विधिपूर्वकः।
योऽवहारो विभागः स्याद् व्यवहारो नयः स्मृतः।।
– श्लोकवार्तिक, नयविवरण, श्लोक ७२

विच्छेद है, विग्रह है। यदि संग्रहनय भेद में अभेद स्थापित करनेवाला अभेदकनय है तो व्यवहारनय अभेद में भेद करनेवाला भेदकनय।

इन दोनों नयों की दिशा एकदम एक-दूसरे के विपरीत है। ये दोनों नय मथानी की डोरी के उन दोनों छोरों के समान हैं, जो एक-दूसरे के विरुद्ध ताकत लगाते हैं। एक छोर के आगे बढ़ने पर दूसरे का पीछे हटना अनिवार्य हो जाता है। एक-दूसरे के आगे बढ़ने और पीछे हटने की निरन्तर गतिशील इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप ही दही में से मक्खन निकलता है।

तत्त्वरूपी मक्खन की प्राप्ति के लिये संग्रह-व्यवहार की यह मंथन-प्रक्रिया निरन्तर चलना अत्यन्त आवश्यक है। **सादृश्यास्तित्व से स्वरूपास्तित्व के छोर तक और स्वरूपास्तित्व से सादृश्यास्तित्व के छोर तक निरन्तर घूमनेवाला यह नयचक्र वस्तुस्वरूप समझने का, प्रतिपादन करने का अमोघ चक्र है।**

संगठन का आधार संग्रहनय है और विघटन का आधार व्यवहारनय। समाज के विकास और व्यवस्था के लिये दोनों की ही अत्यन्त आवश्यकता है। सामाजिक विकास के लिये संगठन की आवश्यकता से तो सभी भली-भाँति परिचित हैं, इसके संबंध में विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है; किन्तु विघटन भी समाज के लिये कितना उपयोगी है, इस पर किंचित् विचार अवश्य अपेक्षित है।

हमारे इस भारत देश की समृद्धि के लिये जितनी आवश्यक इसकी अखण्डता है; प्रान्तों, जिलों आदि में विभाजित करना भी उससे कम आवश्यक नहीं; विकास और व्यवस्था के लिये विभाजन आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है।

ध्यान रखने की बात यह है कि यह विभाजन अखण्डता को खण्डित करने वाला नहीं होना चाहिये। जिसप्रकार अखण्डता को कायम रखकर व्यवस्था के लिये किया गया विभाजन देश को सुखी और समृद्ध करता है; उसीप्रकार सन्मात्र को कायम रखकर किया गया विभाजन वस्तुस्वरूप को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी है। इसप्रकार समष्टि की ओर ले जाने वाला संग्रहनय है और व्यष्टि की ओर ले जानेवाला व्यवहारनय है।

व्यक्तियों को समाज के रूप में संग्रह करनेवाला नय संग्रहनय है और समाज को अपने वर्गों में विभाजित करते हुए व्यक्ति तक पहुँचाना व्यवहारनय का कार्य है।

लोक में व्यक्ति और समाज दोनों ही महत्त्वपूर्ण हैं। व्यक्ति की उपेक्षा करनेवाला समाज और समाज की उपेक्षा करनेवाला व्यक्ति - दोनों ही अभीष्ट की प्राप्ति करने में समर्थ नहीं होते। दोनों में से किसी की भी उपेक्षा उचित नहीं

है; संभव भी नहीं है, दोनों के समुचित समादर में ही समाज व व्यक्ति का हित निहित है।

सादृश्यास्तित्व से लेकर स्वरूपास्तित्व के बीच ऐसे अनेक बिन्दु हैं, जो संग्रह व व्यवहार दोनों ही नयों के विषय बनते हैं, पर दोनों नयों के दृष्टिकोण अलग-अलग होने से दोनों के मुख परस्पर विरुद्ध ही रहते हैं।

संग्रहनय संग्रहोन्मुखी है और व्यवहारनय विभाजनोन्मुखी। जब हम जीवों को गतियों की अपेक्षा चार भागों में विभाजित करते हैं और कहते हैं कि जीव के चार प्रकार हैं - देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारकी; तब 'मनुष्य' व्यवहारनय का विषय बनता है; किन्तु जब हम 'मनुष्य' शब्द से मनुष्य गति के समस्त जीवों का संग्रह करते हैं, तब वह संग्रहनय का विषय बनता है।

ध्यान रहे यह व्यवहारनय; निश्चय-व्यवहारवाले व्यवहारनय से एकदम जुदा हैं। यह व्यवहारनय, संग्रहनय के विरुद्ध है और वह व्यवहारनय निश्चयनय के विरुद्ध है।

यदि निश्चय-व्यवहारवाले व्यवहारनय के विषय में जानना चाहते हैं तो आपको लेखक की अन्य कृति **परमभावप्रकाशकनयचक्र** में निश्चय-व्यवहार संबंधी प्रकरण का अध्ययन करना चाहिए।

इसीप्रकार व्यवहारनय संग्रहनय द्वारा संगृहीत विषयों को विभाजित करता है और संग्रहनय व्यवहारनय द्वारा विभाजित विषयों को संगृहीत करता है।

यद्यपि संग्रह और विभाजन की ये क्रियाएँ परस्पर विरुद्ध प्रतीत होती हैं; तथापि उनमें परस्पर कोई विरोध नहीं है, अपितु वे एक-दूसरे की पूरक क्रियाएँ ही हैं; क्योंकि यदि संग्रहनय द्वारा अनेक पदार्थ संगृहीत नहीं किये जावेंगे तो व्यवहारनय विभाजन किसका करेगा ? इसीप्रकार यदि व्यवहारनय द्वारा पदार्थ विभाजित नहीं होंगे तो संग्रहनय किसका संग्रह करेगा ?

संग्रह और विभाजन की यह क्रिया ज्ञान में जितनी अधिक सम्पन्न होगी, वस्तुस्वरूप भी ज्ञान में उतना ही अधिक स्पष्ट प्रतिभासित होगा।

इसप्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न दृष्टिकोणों से वस्तुस्वरूप के प्रतिपादक, अद्वैत और द्वैत के ग्राहक ये संग्रह और व्यवहारनय लौकिक और पारलौकिक दोनों ही दृष्टियों से अत्यन्त उपयोगी एवं जिनागम के आधारभूत नय हैं।

४. ऋजुसूत्रनय – यह तो स्पष्ट किया ही जा चुका है कि द्रव्यार्थिकनय सामान्यग्राही होता है और पर्यायार्थिकनय विशेषग्राही।

सामान्यग्राही द्रव्यार्थिकनयों में अद्वैतग्राही संग्रहनय, द्वैतग्राही व्यवहारनय एवं उभयग्राही व संकल्पग्राही नैगमनय की चर्चा अपेक्षित विस्तार से हो चुकी है। **अब विशेषग्राही पर्यायार्थिकनय के रूप में ऋजुसूत्रनय की चर्चा प्रसंगप्राप्त है।**

ऋजुसूत्रनय मुख्यरूप से क्षण-क्षण में ध्वंस होनेवाली पर्यायों को वस्तुरूप से विषय करता है, विद्यमान होते हुए भी विवक्षा नहीं होने से इसमें द्रव्य की गौणता है।

यह ऋजुसूत्रनय भी दो प्रकार का है -

१. सूक्ष्मऋजुसूत्रनय एवं २. स्थूलऋजुसूत्रनय।

जो द्रव्य में एकसमयवर्ती अध्रुव पर्याय को ग्रहण करता है, उसे सूक्ष्मऋजुसूत्रनय कहते हैं। जैसे - सभी शब्द क्षणिक हैं। और जो अपनी स्थिति-पर्यन्त रहनेवाली मनुष्य आदि पर्याय को उतने समय तक एक मनुष्यपर्यायरूप से ग्रहण करता है, वह स्थूलऋजुसूत्रनय है।

सूक्ष्मऋजुसूत्रनय एकसमयवर्ती अर्थपर्याय अर्थात् गुणपर्याय को अपना विषय बनाता है और स्थूलऋजुसूत्रनय अनेकसमयवर्ती व्यंजनपर्याय अर्थात् द्रव्यपर्याय को अपना विषय बनाता है।

सूक्ष्मऋजुसूत्रनय को शुद्धऋजुसूत्रनय एवं स्थूलऋजुसूत्रनय को अशुद्धऋजुसूत्रनय भी कहते हैं।

यद्यपि यह बात परमसत्य है कि वर्तमान एक समयमात्र ही होता है; क्योंकि वर्तमान के एक समय पूर्व तक का काल भूतकाल तथा वर्तमान के एक समय बाद का काल भविष्य काल कहा जाता है। भूत-भविष्य के बीच मात्र एक समय ही रहता है, जो वर्तमानकाल कहा जाता है। वास्तविक अर्थपर्याय-गुणपर्याय भी एक समयमात्र ही स्थिर रहती है और वही वास्तविक पर्याय है; अत: उसे ही शुद्धपर्याय कहते हैं।

यहाँ शुद्धपर्याय से तात्पर्य निर्विकारी निर्मल पर्याय से नहीं है, अपितु अनेक पर्यायों के समुदायरूप पर्याय न होकर अकेली एक पर्याय से है। चाहे वह पर्याय समल हो या निर्मल, पर अकेली हो तो शुद्ध ही है। यहाँ उसका एकत्व ही शुद्धता है। यही कारण है कि एकसमयवर्ती पर्याय को विषय बनाने वाले ऋजुसूत्रनय को शुद्धऋजुसूत्रनय कहा जाता है।

एकसमयवर्ती पर्याय के अत्यन्त सूक्ष्म होने से उसे विषय करनेवाले नय को सूक्ष्मऋजुसूत्रनय भी कहा जाता है और यही वास्तविक ऋजुसूत्रनय है; तथापि **यह भी तो सत्य है कि वह एकसमयवर्ती पर्याय क्षयोपशम ज्ञान वालों की पकड़ में**

अनेक समय बाद ही आती है। बाद में भी वह सीधी पकड़ में कहाँ आती है ? उसे तो अनुमान और आगम प्रमाण से ही जाना जाता है। उसके माध्यम से कुछ भी व्यवहार संभव नहीं है।

यही कारण है कि अनेक पर्यायों के समूहरूप मनुष्यादि व्यंजनपर्यायों-द्रव्यपर्यायों के आधार पर ही ऋजुसूत्रनय संबंधी समस्त व्यवहार चलता है, जो कि अनुचित भी नहीं है; क्योंकि जिनागम में भी मनुष्य, देव, नारकी, तिर्यंच आदि पर्यायों को 'पर्याय' संज्ञा दी गई है।

ये मनुष्यादि पर्यायें अनेक पर्यायों के समूहरूप पर्यायें हैं; अत: अशुद्ध कही जाती हैं और इन्हें विषय बनानेवाले नय को भी अशुद्धऋजुसूत्रनय कहा जाता है। ये पर्यायें सामान्यजन के भी बुद्धिगोचर होने से स्थूल हैं, अत: इन्हें ग्रहण करनेवाले नय को स्थूलऋजुसूत्रनय भी कहा जाता है।

यद्यपि वास्तविक वर्तमान एक समय का ही होता है; तथापि आज, इसी माह, इसी वर्ष, इसी शताब्दी में, इसी पंचम काल में, इसी अवसर्पिणी में आदि को भी तो वर्तमान के रूप में ही कहा जाता है।

क्या जिनागम में ऋषभदेव से लेकर महावीर तक के तीर्थंकरों को वर्तमान-चौबीसी के रूप में नहीं बताया गया है ? क्या एक कोड़ा-कोड़ी सागर पहले हुए ऋषभदेव को वर्तमान तीर्थंकर के रूप में प्रतिष्ठित नहीं किया जाता है ?

इसतरह हम देखते हैं कि यदि निश्चयवर्तमान एक समय का ही होता है तो व्यवहारवर्तमान दो समयों से लेकर करोड़ों वर्ष तक का भी माना जाता रहा है। इस व्यवहारवर्तमान को ही स्थूलवर्तमान - अशुद्धवर्तमान नाम से अभिहित किया जाता है और इसके ग्राहक ऋजुसूत्रनय को स्थूलऋजुसूत्रनय या अशुद्धऋजुसूत्रनय कहा जाता है।

शब्दनय

ज्ञाननय, अर्थनय और शब्दनय के भेद से की गई नयों की चर्चा में ज्ञाननय के रूप में नैगमनय एवं अर्थनय के रूप में नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्रनय की चर्चा अपेक्षित विस्तार से हो चुकी है।

अब शब्दनयों की चर्चा प्रसंगप्राप्त है।

ये शब्दनय तीन प्रकार के हैं –

(१) शब्दनय (२) समभिरूढ़नय (३) एवंभूतनय।

ध्यान रखने की बात यह है कि उक्त तीनों नयों का सामूहिक नाम भी शब्दनय है और इनमें से प्रथम का नाम भी शब्दनय है। उक्त तीनों नय शब्दों के प्रयोगों पर विचार करते हैं, उन्हें सुसंगत रीति से नियंत्रित करते हैं। यही कारण है कि उक्त तीनों को ही शब्दनय संज्ञा प्राप्त है।

उक्त तीनों नयों के समुदायरूप शब्दनय को व्यंजननय भी कहते हैं; क्योंकि उक्त तीनों नयों के विषयभूत लिखे व बोले जानेवाले शब्द पुद्गलद्रव्य की व्यंजनपर्यायरूप होते हैं। इसीकारण ये तीनों नय पर्यायार्थिकनय भी कहे जाते हैं।

वस्तुस्वरूप के प्रतिपादन में भाषा का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है। भाषा के बिना वस्तुस्वरूप के प्रतिपादन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भाषा के सुसंगत एवं निर्दोष प्रयोग के बिना प्रतिपादन में अनेक ऐसी गंभीर भूलें भी संभव हैं कि जिनसे अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है।

यह तो आप जानते ही हैं कि समस्त जिनागम नयों की भाषा में ही निबद्ध है। अत: जिनागम में निर्दोष प्रतिपादन के लिये व्याकरणसंमत भाषा के प्रयोगों में भी और अधिक कसावट लाने के लिए इन शब्द, समभिरूढ़ एवं एवंभूतनयों का प्रयोग किया गया।

५. शब्दनय – लौकिक व्याकरण का अनुसरण करनेवाला ऋजुसूत्रनय लिंग, संख्या आदि के व्यभिचारों को व्याकरण के नियमों के अपवाद रूप से स्वीकार कर लेता है, पर शब्दनय को वह सहन नहीं होते; अत: समान लिंग व संख्या-वाचक शब्दों को ही एकार्थवाचक रूप से ग्रहण करता है।

जिसप्रकार भिन्नस्वभावी पदार्थ भिन्न ही होते हैं, उनमें किसी प्रकार भी अभेद नहीं देखा जा सकता; उसीप्रकार भिन्न लिंग आदि वाले शब्द भी भिन्न ही होने चाहिए, उनमें किसी प्रकार की भी एकार्थता घटित नहीं हो सकती और इसप्रकार **दार, भार्या, कलत्र –** ये भिन्न लिंग वाले तीन शब्द अथवा **नक्षत्र, पुनर्वसू, शतभिषज** ये भिन्नसंख्यावाचक तीन शब्द और इसीप्रकार अन्य भी भिन्नस्वभाववाची शब्द, भले ही व्यवहार में या लौकिक व्याकरण में एकार्थवाची समझे जायें, परन्तु शब्दनय इनको भिन्न अर्थ का वाचक समझता है।

अत: समान लिंग व संख्या वाले शब्दों में ही एकार्थवाचकता बन सकती है। जैसे - इन्द्र, पुरन्दर, शक्र - ये तीनों शब्द समान पुल्लिंगी होने के कारण एक 'शचीपति' के वाचक है - ऐसा शब्दनय कहता है।

तात्पर्य यह है कि काल, कारक, लिंग, संख्या, वचन और उपसर्ग के भेद से

शब्द के अर्थ में भेद मानने को शब्दनय कहते हैं।

६. समभिरूढनय – यद्यपि शब्दनय लिंग, संख्या, वचन, काल एवं उपसर्ग संबंधी व्यभिचारों को स्वीकार नहीं करता; तथापि इन दोषों से रहित एकार्थवाची शब्दों की सत्ता स्वीकार करता है। इन्द्र, शक्र और पुरन्दर शब्दों का अर्थ एक देवराज ही है, शचीपति ही है – यह उसे सहर्ष स्वीकार है।

यद्यपि यह सत्य है कि उक्त तीनों शब्द देवराज के पर्यायवाची हैं, एक देवराज के लिये ही प्रयुक्त होते हैं; तथापि निरुक्ति की दृष्टि से विचार करें तो उनके अर्थ में अन्तर भी विद्यमान है।

'इन्द्र' शब्द ऐश्वर्य, 'शक्र' शब्द सामर्थ्य एवं 'पुरन्दर' शब्द पुर को भेदन करने की क्रिया की ओर संकेत करता है। ऐश्वर्यवान इन्द्र, सामर्थ्यवान शक्र एवं पुर को भेदनेवाला पुरन्दर कहा जाता है।

शब्दनय शब्द के भेद से अर्थ में भेद होनेवाले इस तथ्य की ओर ध्यान नहीं देता और वह इन्द्र, शक्र और पुरन्दर शब्द को समान अर्थ के द्योतक पर्यायवाची शब्द ही स्वीकार कर लेता है; पर **समभिरूढ़नय की दृष्टि में कोई शब्द पर्यायवाची होते ही नहीं हैं।**

समभिरूढ़नय का कहना है कि लोक में जितने पदार्थ हैं, उनके वाचक शब्द भी उतने ही हैं। यदि अनेक शब्दों का एक ही अर्थ माना जायेगा तो उनके वाच्य पदार्थों को भी मिलकर एक हो जाना होगा, जो कि संभव नहीं है। अत: यही उचित है कि **प्रत्येक शब्द का अर्थ भिन्न-भिन्न ही स्वीकार किया जावे।**

अत: स्पष्ट है कि शब्दनय के द्वारा ग्रहण किये गये समानस्वभावी एकार्थवाची शब्दों में निरुक्ति या व्युत्पत्ति-अर्थ से अर्थभेद की स्थापना करना समभिरूढ़नय का मुख्य कार्य है।

समभिरूढनय की जो व्याख्या अभी तक की गई है, एक वस्तु के वाचक अनेक शब्दों के संदर्भ में ही की गई है; अब अनेकार्थवाची शब्दों के संदर्भ में विचार करते हैं।

अनेकार्थवाची शब्दों के सब अर्थों को गौण करके एक लोकप्रसिद्ध अर्थ को ही ग्रहण करना समभिरूढ़नय का काम है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि समभिरूढ़नय के मूल दो कार्य हैं –

अर्थारूढ़ और शब्दारूढ़।

समानस्वभावी एकार्थवाची शब्दों में व्युत्पत्ति के अनुसार अर्थभेद की स्थापना करना अर्थारूढ़ है। एक देवराज के वाचक शक्र, इन्द्र और पुरंदर शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ स्वीकार करना इसका उदाहरण है।

अनेकार्थवाची शब्दों के एक लोकप्रसिद्ध अर्थ को स्वीकार कर अन्य अर्थों की उपेक्षा कर देना शब्दारूढ़ है। ग्यारह अर्थों वाले 'गो' शब्द का मात्र 'गाय' के अर्थ में ही प्रयोग करना इसका उदाहरण है।

इसप्रकार यह समभिरूढ़नय अर्थारूढ़ और शब्दारूढ़ के भेद से दो प्रकार का होता है।

७. एवंभूतनय – व्याकरणसंमत अपवादों को भी अस्वीकार कर शब्दनय ने एवं एकार्थवाची शब्दों के व्युत्पत्ति के अनुसार भिन्न-भिन्न अर्थ स्वीकार कर समभिरूढ़नय ने प्रतिपादन-शैली एवं भाषा को बहुत कुछ सुगठित कर दिया था; तथापि **एवंभूतनय का कहना है कि 'गच्छतीति गो:' – इस निरुक्ति के अनुसार गमन करती हुई गाय को ही 'गो' कहा जा सकता है, बैठी हुई गाय को नहीं।**

यद्यपि समभिरूढ़नय भी शब्दनय के समान एकार्थवाची अनेक शब्दों की सत्ता स्वीकार नहीं करता। उसका स्पष्ट मत है कि जितने शब्द हैं, उनके वाच्य पृथक्-पृथक् उतने ही होने चाहिये; तथापि वह यह स्वीकार कर लेता है कि विशिष्ट अर्थवाले विशिष्ट शब्द जिस व्यक्ति या वस्तु के वाचक हैं, वे उस व्यक्ति या वस्तु के वाचक मात्र उस क्रिया को करते समय ही नहीं, अपितु आगे-पीछे भी उन्हें उन नामों से अभिहित किया जा सकता है, पर एवंभूतनय को यह स्वीकार नहीं है।

एवंभूतनय का तो स्पष्ट कहना है कि जो पदार्थ जिस समय जो क्रिया कर रहा हो, उसे उस समय उसी नाम से पुकारा जाय। देवराज को इन्दनक्रिया करते समय ही इन्द्र कहा जा सकता है, पुर का दारण करते समय नहीं।

दूसरी बात यह है कि जिस ज्ञान से आत्मा परिणत हो, उसी रूप से उसका निश्चय करानेवाला नय एवंभूतनय है। जैसे इन्द्ररूप ज्ञान से परिणत आत्मा इन्द्र है और अग्निरूप ज्ञान से परिणत आत्मा अग्नि है।

उक्त कथन में सर्वाधिक ध्यान देने योग्य बात यह है कि जिस समय जो आत्मा जिस पदार्थ को जान रहा हो, उस समय वह आत्मा वही है, अर्थात् उसे उस समय उसी नाम से पुकारा जाना चाहिए। **अग्नि को जानने में संलग्न आत्मा अग्नि ही है – यह अभिप्राय है एवंभूतनय का।**

जो जिस समय जिस पदार्थ का ज्ञान कर रहा हो, उस समय उस व्यक्ति विशेष को उस पदार्थ के नाम से ही पुकारना चाहिये; जैसे कि गाय को देखने में उपयुक्त व्यक्ति उस समय 'गाय' शब्द का वाच्य है, मनुष्य या जीव शब्द का नहीं। कारण कि व्यक्ति तो ज्ञानस्वरूप है और ज्ञान का संज्ञाकरण ज्ञेय के बिना किया नहीं जा सकता। एवंभूत की एकत्वदृष्टि में घट व ज्ञान अथवा ज्ञान व ज्ञानधारी जीव - ऐसा द्वैत कहाँ ? अत: घट आदि ज्ञेय ही ज्ञान हैं और वह ज्ञान ही वह व्यक्ति है; अत: घटरूप ही वह व्यक्ति है; अत: व्यक्ति विशेष को 'घट' या 'गाय' कहना उस समय युक्त है।

इसप्रकार हम देखते हैं कि ये तीनों ही नय भाषा के प्रयोगों को आवश्यकतानुसार सुसंगत रूप प्रदान करनेवाले और उत्तरोत्तर सूक्ष्म विषयवाले हैं। ये ही क्यों, नैगमादि सातों ही नय क्रमश: उत्तरोत्तर सूक्ष्म और अल्पविषय वाले हैं और पूर्व-पूर्व के नय आगे-आगे के नयों के हेतु भी हैं। इन सातों नयों को उक्त क्रम में रखने का कारण भी यही है। जैसा कि कहा गया है -

''उत्तरोत्तरसूक्ष्मविषयत्वादेषां क्रम: पूर्वपूर्वहेतुकत्वाच्च। एवमेते नया: पूर्वपूर्वविरुद्धमहाविषया उत्तरोत्तरानुकूलाल्पविषया.... ।[१]''

उत्तरोत्तर सूक्ष्मविषयवाले होने के कारण इनका यह क्रम कहा है। पूर्व-पूर्व के नय आगे-आगे के नयों के हेतु हैं; इसलिये भी यह क्रम कहा है। इसप्रकार ये नय पूर्व-पूर्व विरुद्ध महाविषयवाले और उत्तरोत्तर अनुकूल अल्पविषयवाले हैं।

इसप्रकार नैगमादि सप्तनयों का यह संक्षिप्त विवेचन किया गया है।।33।।

दूसरा अध्याय

पृष्ठभूमि

विगत अध्याय में सम्यग्दर्शन को परिभाषित करते हुए जीवादि सप्त तत्त्वार्थों के श्रद्धान को सम्यग्दर्शन कहा गया है। अत: अब तत्त्वार्थों का विवेचन प्रसंग प्राप्त है। इसलिए **अब इस दूसरे अध्याय में सर्वप्रथम जीव तत्त्वार्थ की चर्चा आरंभ करते हैं; जो चौथे अध्याय तक चलेगी।**

अथवा **विगत अध्याय में प्रमाण और नयों की चर्चा की गई है। अत: अब यहाँ उनके प्रमेयरूप जीवादि तत्त्वार्थों में से सर्वप्रथम जीव तत्त्वार्थ की चर्चा आरंभ करते हैं;** जो चौथे अध्याय तक चलेगी।

जो भाव सभी द्रव्यों में पाये जावें, उन्हें सामान्य या साधारण भाव कहते हैं; परन्तु

१. सर्वार्थसिद्धि : अध्याय १, सूत्र ३३ टीका, पृष्ठ १०२

जो भाव द्रव्य विशेष में पाये जायें; उन्हें विशेष भाव या असाधारण भाव कहते हैं।

जीवतत्त्व के असाधारण भाव

अत: अब यहाँ सर्वप्रथम आत्मा की पहिचान के लिए जीवों के **असाधारण (विशेष) भावों की चर्चा आरंभ करते हैं।** यह चर्चा सातवें सूत्र तक चलेगी। उक्त सात सूत्रों में आदि के दो सूत्र इसप्रकार हैं -

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च ।।१।।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम् ।।२।।

औपशमिक, क्षायिक, मिश्र (क्षायोपशमिक), औदयिक और पारिणामिक - ये पाँच भाव जीव के स्वतत्त्व हैं, असाधारण भाव हैं।

उक्त पाँच भावों के क्रमश: दो, नौ, अठारह, इक्कीस व तीन भेद हैं। इसप्रकार औपशमिक भाव दो प्रकार का है, क्षायिक भाव नौ प्रकार का है, मिश्र अर्थात् क्षायोपशमिकभाव अठारह प्रकार का है, औदयिक भाव इक्कीस प्रकार का है और पारिणामिकभाव तीन प्रकार का है। इसप्रकार ये सभी मिलकर त्रेपन भाव हो गये; जो भाव मात्र जीवों में ही पाये जाते हैं; इसलिए ये जीव के स्वतत्त्व हैं, असाधारण भाव हैं।

इन भावों का विश्लेषण आचार्य अमृतचन्द्र इसप्रकार करते हैं -

''कर्मों का फलदानसामर्थ्यरूप से उद्भवरूप भाव **उदय** है, अनुद्भवरूप भाव **उपशम** है, उद्भव तथा अनुद्भवरूप भाव **क्षयोपशम** है, कर्म के अत्यन्त विश्लेष (वियोग) से उत्पन्न भाव **क्षय** है। द्रव्य का आत्मलाभ (अस्तित्व) जिसका हेतु है, वह **परिणाम** है।

वहाँ उदय से युक्त **औदयिक,** उपशम से युक्त **औपशमिक,** क्षयोपशम से युक्त **क्षायोपशमिक,** क्षय से युक्त **क्षायिक** और परिणाम से युक्त **पारिणामिक** भाव हैं।[१]''

इन पाँच भावों का स्वरूप अकलंकदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

''१. जिसप्रकार कतकफल या निर्मली के डालने से मैले पानी का मैल नीचे बैठ जाता है और जल निर्मल हो जाता है; उसीप्रकार परिणामों की विशुद्धि से कर्मों की शक्ति का अनुद्भूत रहना **उपशम** है।

उपशम के लिए जो भाव होते हैं, वे औपशमिक भाव हैं। **(क्रमश:)**

१. पंचास्तिकायसंग्रह, गाथा ५६ की समयव्याख्या टीका का हिन्दी अनुवाद

छहढाला प्रवचन

मोक्षमहल की सीढी एवं उसकी दुर्लभता

मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै, सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा।।
'दौल' समझ, सुन, चेत, सयाने काल वृथा मत खोवै।
यह नरभव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवै।।१७।।

(सुप्रसिद्ध आध्यात्मिक विद्वान पण्डित दौलतरामजीकृत छहढाला पर गुरुदेवश्री के प्रवचन पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।)

(गतांक से आगे....)

('मोक्ष कह्यो निज शुद्धता') आत्मा के सर्व गुणों की पूर्ण शुद्धता मोक्ष है।

('सर्व गुणांश सो सम्यक्त्व') आत्मा के सर्व गुणों की अंशतः शुद्धता मोक्षमार्ग है।

आत्मा में जैसा ज्ञानानन्दस्वभाव त्रिकाल है, वैसा पर्याय में प्रगट होने का नाम मोक्ष और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र के कारण मोक्षमार्ग में भी मूल सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन क्या है? यह दूसरे पद में बताया है कि –

''परद्रव्यनतैं भिन्न आप में रुचि, सम्यक्त्व भला है।''

परद्रव्यों से भिन्न आत्मा की रुचि सम्यग्दर्शन है। मोक्षार्थी को सबसे पहले ऐसा सम्यग्दर्शन अवश्य प्रगट करना चाहिये। ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा मैं हूँ; शरीरादि अजीव मैं नहीं हूँ, रागादि आस्रव भी मैं नहीं हूँ, इसप्रकार रागादि से भिन्न अपने आत्मा की अनुभूति करने से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन होते ही विशेष शास्त्राभ्यास या संयम न हो तो भी मोक्षमार्ग का प्रारम्भ हो जाता है। श्रीमद् राजचन्द्रजी कहते हैं कि –

''अनंतकाल से जो ज्ञान भवहेतु होता था, उस ज्ञान को क्षणमात्र में जात्यंतर करके जिसने भवनिवृत्तिरूप किया, उस कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन को नमस्कार।''

ऐसे सम्यग्दर्शन का सच्चा स्वरूप इस जीव ने अनंतकाल में नहीं समझा और

विकार को ही आत्मा मानकर उसी के अनुभव में रुक गया है। कभी पाप छोड़कर शुभराग में आया परन्तु शुभराग भी अभूतार्थ धर्म है, वह मोक्ष का कारण नहीं है, और उसके अनुभव से सम्यग्दर्शन नहीं होता। ''भूयत्थमस्सिदो खलु सम्माइट्ठी'' – भूतार्थाश्रित जीव सम्यग्दृष्टि है। सब तत्त्वों का सच्चा निर्णय सम्यग्दर्शन में होता है। आत्मा चैतन्यप्रकाशी ज्ञायक सूर्य है, उसकी किरणों में रागादि का अंधकार नहीं है; शुभाशुभराग, ज्ञान का स्वरूप नहीं है। ऐसे रागरहित ज्ञानस्वभाव को जानकर उसकी प्रतीति एवं अनुभूति करना अपूर्व सम्यग्दर्शन है, वह सबका सार है।

'परमात्मप्रकाश' में कहते हैं कि अनादिकाल से संसार में भटकते हुए जीव ने दो वस्तुएँ प्राप्त नहीं की – एक तो श्री जिनवरस्वामी और दूसरा सम्यक्त्व। बाह्य में तो जिनवरस्वामी मिले परन्तु स्वयं उनके सच्चे स्वरूप को नहीं पहिचाना इसलिये उसे जिनवरस्वामी नहीं मिले, – ऐसा कहा है। जिनवर के आत्मा का स्वरूप पहिचानने से सम्यग्दर्शन होता ही है। सम्यग्दर्शन रहित ज्ञान-चारित्र को भगवान के मार्ग की अर्थात् सच्चाई की छाप नहीं मिलती। सम्यग्दर्शन द्वारा शुद्धात्मा को श्रद्धा में लिया, तप ज्ञान सच्चा हुआ और ऐसे श्रद्धा-ज्ञान द्वारा अनुभव में लिये हुए अपने शुद्धात्मा में लीन होने से चारित्र भी सच्चा हुआ; इसलिये कहा है कि –

''मोक्षमहल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा,
सम्यक्ता न लहे, सो दर्शन धारो भव्य पवित्रा।''

धर्म की पहली सीढ़ी पुण्य नहीं किन्तु सम्यग्दर्शन है। सम्यग्दर्शन से रहित जीव ने पुण्य भी अनन्तबार किया, किन्तु वह संसार का ही कारण हुआ, धर्म का किंचित् कारण नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन करके ही अनन्त जीवों ने मोक्षसाधना की है। सम्यग्दर्शन के बिना किसी ने मोक्ष नहीं पाया। सम्यग्दर्शन के बिना ज्ञान नहीं है और चारित्र भी नहीं है। सम्यग्दर्शन सहित ही ज्ञान और चारित्र शोभा पाते हैं। इसलिये हे भव्य! ऐसे पवित्र सम्यक्त्व को अर्थात् निश्चय सम्यक्त्व को तुम शीघ्र धारण करो; काल गँवाये बिना ऐसा सम्यक्त्व प्रगट करो। आत्मबोध बिना शुभराग से तो मात्र पुण्यबंधन है, उसमें मोक्षमार्ग नहीं है और सम्यग्दर्शन के पश्चात् भी राग मोक्षमार्ग नहीं है, रागरहित रत्नत्रय ही मोक्षमार्ग है; जितना राग है उतना तो बंधन है। व्यवहार सम्यग्दर्शन राग है, विकल्प है, वह पवित्र नहीं है, निश्चय सम्यग्दर्शन पवित्र है, वीतराग है, निर्विकल्प

है। विकल्प से भिन्न होकर चेतना द्वारा ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा के अनुभवपूर्वक प्रतीति करना सच्चा सम्यक्त्व है, वह मोक्ष का सोपान है; इसलिये शुद्धात्मा को अनुभव में लेकर ऐसे सम्यक्त्व को धारण करने का उपदेश है।

हे जीवो! सम्यक्त्व की ऐसी महिमा सुनकर अब तुम जागो, जागकर चेतो, सावधान होओ और ऐसे पवित्र सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझकर अपने पुरुषार्थ द्वारा उसे धारण करो; उसमें प्रमाद न करो। इस दुर्लभ अवसर में सम्यग्दर्शन ही प्रथम कर्तव्य है। पुनः पुनः ऐसा अवसर मिलना कठिन है। सम्यग्दर्शन प्राप्त नहीं किया तो इस दीर्घसंसार में परिभ्रमण का कहीं अन्त नहीं आयेगा... इसलिये हे समझदार जीवो! तुम उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन को धारण करो। सावधान होकर अपनी स्वपर्याय को संभालो! उसे अन्तर्मुख करके सम्यग्दर्शनरूप करो। तुम्हारी पर्याय के कर्त्ता तुम ही हो, भगवान तो तुम्हारी पर्याय के ज्ञाता हैं, परन्तु कर्त्ता नहीं हैं, कर्त्ता तो तुम्हीं हो। इसलिये तुम स्वयं आत्मा के उद्यम द्वारा शीघ्र सम्यग्दर्शन पर्यायरूप परिणमित होओ।

अपना आत्मा क्या है ? उसे जाने बिना अनन्तबार यह जीव स्वर्ग में गया, परन्तु वहाँ उसे किंचित् सुख प्राप्त नहीं हुआ, वह संसार में ही भटका। सुख का कारण तो आत्मज्ञान है। अज्ञानी को करोड़ों जन्म तक तप करने से जो कर्म खिरते हैं वे ज्ञानी को आत्मज्ञान द्वारा एक क्षण में खिर जाते हैं इसलिये कहा है कि – **''ज्ञान समान न आन, जगत् में सुख को कारन...''** तीन लोक में सम्यग्दर्शन के समान सुखकारी दूसरा कोई नहीं है। आत्मा के सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना जीव को सुख की एक बून्द भी अनुभव नहीं आती अर्थात् धर्म नहीं होता।

ग्रंथकार कवि अपने आपको सम्बोधन करके कहते हैं कि हे दौलतराम-आत्मा! यह हितोपदेश सुनकर, समझकर चेतो! शीघ्र सम्यग्दर्शन धारण कर अपना हित करो। 'दौलतराम' अर्थात् अन्तर में चैतन्य की दौलत वाला आतमराम, चैतन्य की सम्पदारूप अनन्त दौलतवाले हे दौलतराम! हे आतमराम! तुम तो सुज्ञ हो, विवेकी हो, और यह तुम्हारे हित का अवसर आया है। तुम मूर्ख नहीं हो, समझदार ज्ञान के भण्डार हो, अतः चेतो... समझो और सम्यक्त्व को अभी धारण करो। सम्यक्त्व की प्राप्ति का यह अवसर है उसे वृथा मत खोओ। **(क्रमशः)**

नियमसार प्रवचन –

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र

परमपूज्य सर्वश्रेष्ठ दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्द के प्रसिद्ध परमागम नियमसार के शुद्धभावाधिकार की गाथा 51-55 पर हुये आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के अध्यात्मरस गर्भित प्रवचनों का संक्षिप्त सार यहाँ दिया जा रहा है।

गाथा मूलतः इसप्रकार है –

विवरीयाभिणिवेसविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
संसयविमोहविब्भमविवज्जियं होदि सण्णाणं।।५१।।
चलमलिणमगाढत्तविवज्जियसद्दहणमेव सम्मत्तं।
अधिगमभावो णाणं हेयोवादेयतच्चाणं सम्मत्तं।।५२।।
सम्मत्तस्स णिमित्तं जिणसुत्तं तस्स जाणया पुरिसा।
अंतरहेऊ भणिदा दंसणमोहस्स खयपहुदी।।५३।।
सम्मत्तं सण्णाणं विज्जदि मोक्खस्स होदि सुण चरणं।
ववहारणिच्छएण दु तम्हा चरणं पवक्खामि।।५४।।
ववहारणयचरित्ते ववहारणयस्स होदि तवचरणं।
णिच्छयणयचारित्ते तवचरणं होदि णिच्छयदो।।५५।।

(हरिगीत)

मिथ्याभिप्राय विहीन जो श्रद्धान वह सम्यक्त्व है।
विभरम संशय मोह विरहित ज्ञान ही सद्ज्ञान है।।५१।।
चल मल अगाढ़पने रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है।
आदेय हेय पदार्थ का ही ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।। ५२।।
जिन सूत्र समकित हेतु पर जो सूत्र के ज्ञायक पुरुष।
वे अंतरंग निमित्त हैं दृग मोह क्षय के हेतु से।। ५३।।
सम्यक्त्व सम्यग्ज्ञान पूर्वक आचरण है मुक्तिमग।
व्यवहार-निश्चय से अतः चारित्र की चर्चा करूँ।।५४।।
व्यवहारनय चारित्र में व्यवहारनय तपचरण हो।
नियतनय चारित्र में बस नियतनय तपचरण हो।।५५।।

विपरीत अभिनिवेश रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है; संशय विमोह और विभ्रम रहित ज्ञान ही सम्यग्ज्ञान है।

चलता, मलिनता और अगाढता रहित श्रद्धान ही सम्यक्त्व है; हेय और उपादेय तत्त्वों को जाननेरूप भाव सम्यग्ज्ञान है।

सम्यक्त्व का निमित्त जिनसूत्र है; जिनसूत्र के जाननेवाले पुरुषों को (सम्यक्त्व के) अंतरंग हेतु कहे हैं, क्योंकि उनको दर्शनमोह के क्षयादिक हैं।

सुन, मोक्ष के लिये सम्यक्त्व होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, चारित्र (भी) होता है, इसलिये मैं व्यवहार और निश्चय से चारित्र कहूँगा।

व्यवहारनय के चारित्र में व्यवहारनय का तपश्चरण होता है; निश्चयनय के चारित्र में निश्चय से तपश्चरण होता है।

(गतांक से आगे ...)

परमशुद्ध आत्मस्वभाव में प्रतपन, निश्चयतप है।

''सहजनिश्चयनयात्मक परमस्वभावस्वरूप परमात्मा में प्रतपन, तप है; निजस्वरूप में अविचलस्थितिरूप सहजनिश्चयचारित्र इस तप से होता है।''

अब, निश्चयतप की व्याख्या करते हैं। आत्मा आनन्दकन्द है। ऐसे परमस्वभावरूप आत्मा में लीन होना, शोभायमान होना, वीतरागीदशा की उज्ज्वलता होना, निश्चयतप है। आजकल तो अज्ञानी जीव बाहर की क्रिया में, भोजन न करने में तप मान बैठे हैं। आहार नहीं लिया इसलिए तप हो गया, ऐसे माननेवाले जीव रोटी इत्यादि जड़पदार्थों के ग्रहण-त्याग के स्वामी होते हैं – वे मिथ्यादृष्टि हैं। आहार न मिलने से जीव को लाभ हो तो आहार पर्याय आत्मा के परिणाम की स्वामी हो जाय, अतः आहार देने से शुभभाव नहीं होता और आहार न देने से अशुभभाव नहीं होता। अशुभभाव-शुभभाव जीव स्वतंत्रतया करता है, जड़ की क्रिया के साथ उसका सम्बन्ध नहीं है। तथा शुभभाव होना भी तप नहीं है। यदि पर के कारण तप होता हो तो परद्रव्य आत्मा का स्वामी हो जाय, आत्मा स्वतंत्र नहीं रहे। परपदार्थ से रहित, विकारभाव से रहित एकरूप शुद्ध परमात्मास्वरूप अपना आत्मा है, ऐसे आत्मा में लीन होना –

एकाग्र होने को भगवान तपश्चर्या कहते हैं और उस तपश्चर्या से निर्जरा होती है। शेष सभी तपों को अज्ञानतप और अज्ञानव्रत कहते हैं।

निश्चयतप से अपने में अविचल स्थितिरूप सहजचारित्र होता है और सिद्धदशा प्राप्त होती है।

ऐसी लीनतारूप प्रतपन से अथवा निश्चयतप से निश्चयचारित्र प्रकट होता है। ऐसे निश्चयतप से अपने स्वभाव में अविचलपने स्थिति होती है, उसको निश्चयचारित्र कहते हैं। शरीर की नग्नदशा से अथवा पंचमहाव्रत के परिणाम से निश्चयचारित्र प्रकट नहीं होता, किन्तु ज्ञानस्वभाव में लीनतारूपी तप से चारित्र प्रकट होता है। सर्वप्रथम व्यवहार की हुई बात मात्र जानने के लिए है; परन्तु आदरणीय नहीं है, एक शुद्धचैतन्यस्वभाव ही आदरणीय है। आत्मा के अन्दर उदयभाव, क्षयोपशमभाव, उपशमभाव है ये सब एकसमय की पर्याय हैं, पर्याय में से पर्याय नहीं आती। पूर्व पर्याय तो व्ययरूप है, परन्तु शुद्धचैतन्यस्वभाव त्रिकाल शुद्ध है, उसके अवलम्बन से श्रद्धा-ज्ञान-चारित्र-तप की पर्याय प्रकट होती है, इसलिए अंशबुद्धि पर्यायबुद्धि छोड़कर त्रिकाली स्वभाव दृष्टि करना ही धर्म का कारण है। इसप्रकार जो जीव अपने स्वभाव की श्रद्धा और ज्ञान करके लीनता करता है उसको अभूतपूर्व सिद्धदशा प्रकट होती है। उस सिद्धदशा का कारण निजकारणपरमात्मा है।

इसीप्रकार एकत्वसप्तति में (श्री पद्मनन्दि-आचार्यदेवकृत पद्मनन्दि-पंचविंशतिका नामक शास्त्र में एकत्वसप्तति नाम के अधिकार में १४वें श्लोक द्वारा) कहा है कि :-

(अनुष्टुभ्)

दर्शनं निश्चयः पुंसि बोधस्तद्बोध इष्यते।
स्थितिरत्रैव चारित्रमिति योगः शिवाश्रयः ।।२५।।

(दोहा)

आत्मबोध ही बोध है, निश्चय दर्शन जान।
आत्मस्थिति चारित्र है युति शिवमग पहचान।। २५।।

आत्मा का निश्चय, दर्शन है, आत्मा का बोध, ज्ञान है, आत्मा में ही स्थिति, चारित्र है; – ऐसा योग (अर्थात् इन तीनों की एकता) शिवपद का कारण है।

शुद्ध अखण्ड ध्रुव आत्मा है और ऐसे द्रव्यस्वभाव की निर्विकल्प अन्तरंग प्रतीति, सम्यग्दर्शन है। एक समय का विकार अथवा पर्याय जितना आत्मा नहीं है; शरीर-मन-वाणी या पंचमहाव्रतादि के शुभपरिणाम आत्मा नहीं है; क्योंकि पर्याय जितना ही सम्पूर्ण आत्मा नहीं है। निश्चयनय के विषयभूत आत्मा की यहाँ चर्चा है और उसी के भावसहित व्यवहार का सच्चा ज्ञान होता है।

आत्मा शुद्धकारणपरमात्मा भगवान है। वह स्वयं विकार को करता भी नहीं और टालता भी नहीं – ऐसा आत्मा ही सम्यग्दर्शन में आदरणीय है, क्षणिक पर्याय सम्यग्दर्शन में आदर करने योग्य नहीं। ध्रुव सामान्य ज्ञायकस्वभाव की दृष्टि सम्यग्दर्शन है।

आत्मा का अन्तर्मुख सम्यग्ज्ञान होना ही ज्ञान है, शास्त्र का ज्ञान तो व्यवहार है। अन्तर में शुद्ध आत्मा के ज्ञान बिना सम्यग्ज्ञान नहीं होता।

शुद्ध आत्मा में निश्चयपने लीनता होना सम्यक्चारित्र है, बीच में विकल्प आना व्यवहार है। निश्चय से तो शुद्ध ध्रुव आत्मा में लीनता ही चारित्र है – ऐसा निश्चयचारित्र हो वहाँ विकल्प को व्यवहारचारित्र कहा जाता है।

इसप्रकार शुद्ध आत्मा की श्रद्धा-ज्ञान और लीनता इन तीनों का योग शिवपद का कारण है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों की एकता, मोक्ष का कारण है और उसका मूल तो त्रिकाली कारणपरमात्मा है, उसी के आश्रय से रत्नत्रय प्रकट होता है।

टीकाकार स्वयं पद्मप्रभमलधारिदेव मुनिराज हैं और टीका में पद्मनंदि आचार्य के श्लोक का आधार दिया है। आत्मा का स्वभाव त्रिकालध्रुव एकरूप है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और एकाग्रता ही मोक्ष का मार्ग है – अन्य कोई मार्ग है ही नहीं।

और (इस शुद्धभाव अधिकार की अन्तिम पाँच गाथाओं की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेव श्लोक कहते हैं):-

(मालिनी)

जयति सहजबोधस्तादृशी दृष्टिरेषा
चरणमपि विशुद्धं तद्विधं चैव नित्यम्।
अघकुलमलपंकानीकनिर्मुक्तमूर्तिः
सहजपरमतत्त्वे संस्थिता चेतना च।।७५।।

(हरिगीत)

जयवंत है सद्बोध अर सद्दृष्टि भी जयवंत है।
अर चरण भी सुविशुद्ध जो वह भी सदा जयवंत है।।
अर पापपंकविहीन सहजानन्द आतमतत्त्व में।
ही जो रहे, वह चेतना भी तो सदा जयवंत है॥७५॥

सहजज्ञान सदा जयवन्त है, वैसी (सहज) यह दृष्टि सदा जयवन्त है, वैसा ही (सहज) विशुद्ध चारित्र भी सदा जयवन्त है; पाप समूहरूपी मल की अथवा कीचड़ की पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है ऐसी सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना भी सदा जयवन्त है।

सहजज्ञान सदा जयवन्त है। कैसा सहजज्ञान? आत्मा का ध्रुव त्रिकाल एकरूप सहजज्ञान त्रिकाल जयवन्त है। निजकारण परमात्मा का सहजज्ञान त्रिकाल जयवन्त है। ऐसे त्रिकाल ज्ञान का ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान है।

पुनश्च, ज्ञान की तरह त्रिकाली सहजदृष्टि भी सदा जयवन्त वर्तती है, आत्मा में सम्यग्दर्शन पर्याय तो नई प्रकट होती है, परन्तु यह सहजदृष्टि त्रिकाल जयवन्त वर्तती है, उसकी दृष्टि करना सम्यग्दर्शन है।

उसीप्रकार सहजविशुद्धचारित्र भी वस्तुस्वरूप में सदा जयवन्त वर्तता है। मोक्ष का कारण जो नवीन प्रकट होनेवाला सम्यक्चारित्र है उसकी यहाँ बात नहीं है। यहाँ तो आत्मा के स्वरूप में अनादि-अनन्त सहजचारित्र जयवन्त वर्तता है, उसकी दृष्टि-ज्ञान और रमणता करना मोक्ष का कारण है।

ऐसा निश्चयरत्नत्रय होने पर बीच में उठानेवाले विकल्प को व्यवहारचारित्र कहते हैं।

पापसमूहरूपी मल की अथवा कादव की पंक्ति से रहित जिसका स्वरूप है ऐसे सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना भी सदा जयवन्त वर्तती है।

पुण्य और पाप दोनों संसार के कारण हैं अतः वे दोनों ही पाप हैं, आत्मा त्रिकाल उनसे रहित सहजपरमतत्त्व है। चैतन्यस्वरूप से विरुद्ध होनेवाली समस्त वृत्ति पाप है, कीचड़ है, वह चैतन्य के निर्मल स्वरूप में नहीं है। ऐसे त्रिकाली सहजपरमतत्त्व में संस्थित चेतना भी सदा जयवन्त है। आत्मा त्रिकाल चैतन्यमूर्ति विकार के अभावस्वरूप है। विकार टालना और मुक्ति होना मूल त्रिकालीस्वरूप नहीं है, वह

तो नई दशा है; त्रिकालीस्वरूप तो अनादि-अनन्त एकरूप है। विकार करना और टालना – ऐसे दो प्रकार भी उसमें नहीं हैं। ऐसे एकरूप चिदानन्दतत्त्व की दृष्टि ही सम्यग्दर्शन है।

लोगों को ऐसे अन्तर्तत्त्व की बात सुनना भी दुर्लभ है। प्रथम तो अध्यात्मग्रन्थों की श्रवणोपलब्धि ही अतिदुर्लभ है, श्रवण मिलने पर उसका यथार्थ ज्ञान होना तो और भी दुर्लभ है। ज्ञानी धर्मात्मा मिले, उसके समागम से अध्यात्मग्रन्थ क्या कहते हैं, उसका समुचित ज्ञान करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्योपाय से सच्चा ज्ञान नहीं होता।

भगवान कारणपरमात्मा ही मुख्य वस्तु है। मोक्ष प्रकट होना भी मुख्य वस्तु नहीं है। रागरूप कर्मचेतना अथवा हर्ष-शोक को भोगनेरूप कर्मफलचेतना आत्मा का स्वरूप नहीं है और निर्मल ज्ञान प्रकट होना भी आत्मा का त्रिकालस्वरूप नहीं है, आत्मा तो त्रिकाल सहजचेतनामय है। चैतन्य परमतत्त्व में संस्थित सहजचेतना त्रिकाल जयवन्त वर्तती है। समय-समय स्वरूप के आनन्द का ध्रुव अनुभव करनेवाली सहजचेतना त्रिकाल जयवन्त वर्तती है। ऐसा आत्मा ही परमतत्त्व है, संवर-निर्जरा-मोक्ष भी परमतत्त्व नहीं है।

त्रिकाल एकरूप जैसे का तैसा भगवान विराजता है वही आदरणीय है। संसार और मोक्ष दोनों व्यवहारनय के विषय हैं, वे एक समय जितने हैं, अवश्य; परन्तु आदरणीय नहीं हैं। त्रिकाल आनन्दकन्द सहजानन्द ध्रुव परमतत्त्व में हर्ष-शोक का भोग नहीं है; किन्तु सहजचेतना त्रिकाल जयवन्त वर्तती है।

ऐसे तत्त्व की श्रद्धा-ज्ञान-रमणतारूप निश्चयरत्नत्रय मोक्षमार्ग है, ऐसी मुनिदशा प्रकट होने के पश्चात् वहाँ विकल्प उठने पर व्यवहारचारित्र कैसा होता है, वह अग्रिम अधिकार में वर्णन किया जाएगा।

इसप्रकार सुकविजनरूपी कमलों के लिये जो सूर्य समान हैं और पाँच इन्द्रियों के विस्तार रहित देहमात्र जिन्हें परिग्रह था ऐसे श्री पद्मप्रभमलधारिदेव द्वारा रचित नियमसार की तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में (अर्थात् श्रीमद्भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेवप्रणीत श्री नियमसार परमागम की निर्ग्रन्थ मुनिराज श्री पद्मप्रभमलधारिदेवविरचित तात्पर्यवृत्ति नामक टीका में) शुद्धभाव अधिकार नाम का तीसरा श्रुतस्कन्ध समाप्त हुआ। **(क्रमशः)**

ज्ञान गोष्ठी

सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय विभिन्न मुमुक्षुओं द्वारा
पूज्य स्वामीजी से पूछे गये प्रश्न और स्वामीजी द्वारा दिये गये उत्तर

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि का उपयोग पर में हो, तब स्वप्रकाशक है क्या ?

उत्तर : सम्यग्दृष्टि का उपयोग पर में हो, तब भी स्वप्रकाशक है; परन्तु उपयोगरूप पर-प्रकाशक के काल में उपयोगरूप स्व-प्रकाशक नहीं होता और जब उपयोगरूप स्व-प्रकाशक हो, तब उपयोगरूप पर-प्रकाशक नहीं होता; किन्तु ज्ञान का स्वभाव तो स्व-पर प्रकाशक ही है।

प्रश्न : यदि राग से परद्रव्य में कोई फेरफार नहीं कर सकते तो ज्ञानी जीव परद्रव्य में फेरफार करने का राग क्यों करता है ?

उत्तर : राग से तो परद्रव्य में परिवर्तन - फेरफार हो सकता ही नहीं; फिर भी ज्ञानी को निर्बलता से राग आता; तथापि उस राग का वह कर्ता नहीं होता, उसको ज्ञेय बनाकर ज्ञाता रहता है।

प्रश्न : ज्ञानी सारे दिन शास्त्र-वाँचन, उपदेशादि करता हुआ दिखाई देता है; तो भी आप कहते हो कि ज्ञानी राग को नहीं करता, इससे क्या समझना चाहिए ?

उत्तर : राग आता है अवश्य; किन्तु ज्ञानी तो उस राग का मात्र जाननेवाला है। आत्मा को जानता होने से स्व-पर प्रकाशक ज्ञान समय-समय पर होता है और उसी समय जो राग होता है, उसको भी जानता है, फिर भी उस राग का स्वामी नहीं होता। ज्ञानी राग को परज्ञेयरूप से जानता है। वास्तव में उस राग संबन्धी जो अपना ज्ञान है, उस ज्ञान को ही जानता है। ज्ञान में राग निमित्त है; किन्तु राग का ज्ञान अपने में अपने से हुआ है और वह अपना कार्य है तथा उस समय होनेवाला राग वह अपना कार्य नहीं है - ऐसा ज्ञानी जानता है।

प्रश्न : ज्ञानी को राग होता दिखाई देता है, तथापि ज्ञनी को राग नहीं होता - ऐसा कथन किस अपेक्षा से है ?

उत्तर : ज्ञानी को अल्प राग-द्वेष होता है। उसमें एकत्वबुद्धि नहीं होती, इसलिए वह गिनती में नहीं है। ज्ञानी जीव पर के कारण राग मानता नहीं, स्वभाव में से राग आता नहीं, जो राग होता है, उसमें एकता मानता नहीं; अपने स्वभाव को राग

से भिन्न ही मानता है, अनुभवता है; इसलिए ज्ञानी के वास्तव में राग होता ही नहीं, उसके तो स्वभाव की एकता ही बढ़ती है।

प्रश्न : ज्ञानी का ज्ञान स्व तथा पर दोनों को जानता है, तो भी उसका ज्ञानोपयोग स्व में स्थिर न रहकर पर की तरफ जाता है। यह दोष वास्तव में ज्ञान का है या नहीं?

उत्तर : पर में उपयोग के जाते समय ज्ञानी के ज्ञान की सम्यक्ता का अभाव होकर मिथ्यापना तो होता नहीं - इस अपेक्षा से ज्ञानी के ज्ञान में दोष नहीं है; परन्तु अभी ज्ञान ने केवलज्ञानरूप परिणमन नहीं किया है, वह दोष तो ज्ञान का ही है; क्योंकि ज्ञान का स्वभाव तो केवलज्ञानरूप होने का है। अत: जबतक ज्ञान केवलज्ञानरूप परिणमन न करे, तबतक वह सदोष है, सावरण है, मिथ्या न होने पर दोषी तो है। उपयोग भले स्व में हो, फिर भी पूर्ण केवलज्ञानरूप से परिणमन नहीं किया, वह दोष तो ज्ञान का ही है। ऐसा होने पर भी उस समय जो राग है, वह कहीं ज्ञानकृत नहीं है - राग तो चारित्र का दोष है।

प्रश्न : सम्यग्दृष्टि राग का कर्ता नहीं, सर्वज्ञ की तरह मात्र राग का ज्ञाता ही है; फिर भी सम्यग्दृष्टि की पर्याय में राग होता तो है न ?

उत्तर : राग सम्यग्दृष्टि की पर्याय ही नहीं। समयसार गाथा 12 में कहा है न, उससमय जाना हुआ प्रयोजनवान है। सर्वज्ञ एक समय में एकसाथ त्रिकाल को जानते हैं और नीचे साधकजीव उस-उस काल के राग को जानता है। जैसा-जैसा ज्ञान होता है; वैसा-वैसा राग निमित्त होता है। आगे-पीछे ज्ञान हो - यह बात ही नहीं है - एक काल में ही है।

धर्मी जीव जानता है कि द्रव्यों में पर्यायें हो रही हैं, उन्हें सर्वज्ञ जान रहा है। उन्हें करे क्या ? तथा सम्यग्दर्शनादि में धर्म की पर्याय भी हो रही है, उसे करे क्या ? जो पर्याय स्वकाल में हो ही रही है, उसे करे क्या ? और उसे करने का विकल्प भी क्यों? सर्वज्ञ तो प्रत्यक्ष देख रहा है और नीचे धर्मी जीव परोक्ष देख रहा है। मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का ही अन्तर है। केवल दिशा बदलनी है, अन्य कुछ भी नहीं करना है।

जो पर्याय होनेवाली है, उसे करना क्या ? और जो नहीं होनेवाली है, उसे भी करना क्या ? ऐसा निश्चय करते ही कर्तृत्वबुद्धि छूटकर स्वभाव सन्मुखता हो जाती है। सर्वज्ञदेव त्रिकाली को देखने-जानने वाले हैं और मैं भी त्रिकाली का ज्ञाता-दृष्टा ही हूँ - इसप्रकार त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव का निश्चय करना वही सम्यग्दर्शन है।

समाचार दर्शन -

देशभर में शिक्षण शिविरों की धूम

ग्रीष्मकालीन अवकाश के अवसर पर मई एवं जून माह में पूरे देशभर में ग्रुप शिविरों एवं बाल संस्कार शिविरों के माध्यम से अभूतपूर्व तत्त्वप्रचार हुआ। इन शिविरों के अन्तर्गत भिण्ड के नेतृत्व में 73 स्थानों पर ग्रुप शिविर एवं पिड़ावा, नातेपुते, सनावद, बीना, अशोकनगर, बण्डा, समरखेड़ी-विदिशा में बाल एवं युवा संस्कार शिविर लगाये गये। इन ग्रुप शिविरों एवं बाल संस्कार शिविरों के द्वारा हजारों बालकों ने जैनधर्म के सिद्धान्तोंका ज्ञान प्राप्त किया।

(1) भिण्ड (म.प्र.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान, उज्जैन द्वारा श्री कुन्दकुन्द स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट एवं अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन शाखा देवनगर के संयुक्त तत्त्वावधान में दिनांक 5 से 14 जून तक ब्र. रवीन्द्रजी 'आत्मन' अमायन एवं ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना के सानिध्य में दसवाँ सामूहिक जैन बाल संस्कार शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय जयपुर से 75, श्री अकलंक शिक्षण संस्थान बांसवाड़ा से 7, श्री आचार्य धरसेन दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय कोटा से 20, श्री कुन्दकुन्द विद्यानिकेतन सोनागिर से 5, आत्मार्थी कन्या विद्या निकेतन दिल्ली से 16, श्री आदिनाथ विद्या निकेतन मंगलायतन से 2, भूतपूर्व शास्त्री 21, अन्य ब्रह्मचारी, विदुषी बहिन, विद्वान 31 व स्थानीय विद्वान 73 इसप्रकार कुल 249 विद्वानों के सहयोग से तत्त्वप्रचार किया गया।

यह शिविर मध्यप्रदेश के 7 जिलों (भिण्ड, ग्वालियर, मुरैना, शिवपुरी, टीकमगढ, गुना, नरसिंहपुर) तथा उत्तरप्रदेश के 7 जिलों (इटावा, औरया, मैनपुरी, फिरोजाबाद, एटा, झाँसी, ललितपुर) इसप्रकार 14 जिलों के विभिन्न 73 स्थानों पर एक साथ आयोजित किया गया।

इस शिविर के आयोजन हेतु मुख्य रूप से ऐसे ग्रामीण स्थानों का चयन किया था जहाँ कोई विद्वान नहीं पहुँच पाता है। इस शिविर में सभी वर्गों के अनुसार पाठ्यक्रम तैयार किया गया था। सभी 73 स्थानों पर प्रतिदिन प्रात: सामूहिक पूजन/विधान, कक्षायें, दोपहर में सामूहिक कक्षा, सायंकाल कक्षा, भक्ति, प्रौढ कक्षा, प्रवचन व सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये। इस शिविर के निरीक्षण हेतु 15 विद्वानों की 5 निरीक्षण टीम बनाई गई। शिविर के माध्यम से 5878 बालक-बालिकाओं तथा 2346 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

शिविर का उद्घाटन दिनांक 3 जून को एवं समापन समारोह दिनांक 14 जून को श्री 1008 सीमंधर जिनालय, देवनगर में किया गया।

इस शिविर के निर्देशक पण्डित अनिलजी शास्त्री, प्रमुख संयोजक पुष्पेन्द्रजी जैन, संयोजक पण्डित समर्पणजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित सचिनजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित आशीषजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित रविजी शास्त्री गोरमी, पण्डित अंकुरजी शास्त्री मैनपुरी थे। **- पुष्पेन्द्र जैन**

(2) पिड़ावा (राज.) : यहाँ दिनांक 2 से 10 जून तक बाल संस्कार शिविर का

आयोजन किया गया।

इस अवसर पर ब्र. कैलाशचंदजी 'अचल', पण्डित अनिलजी शास्त्री भिण्ड, पण्डित अशोकजी मांगुलकर, पण्डित विरागजी शास्त्री जबलपुर आदि विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला।

शिविर में बाल, युवा व प्रौढ - इसप्रकार तीन कक्षायें लगीं, जिनमें 250-300 विद्यार्थियों ने लाभ लिया। इस अवसर पर पण्डित अनिलजी 'धवल' एवं पण्डित दीपकजी भोपाल के निर्देशन में सिद्धचक्र मण्डल विधान का आयोजन हुआ।

(3) नातेपुते (महा.) : यहाँ दिनांक 29 मई से 5 जून तक शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित प्रशांतजी शेटे, पण्डित संजयजी राउत, पण्डित वीतरागजी, पण्डित कृतिकुमारजी, पण्डित प्रशांतजी पाटील, पण्डित धवलजी गांधी, पण्डित प्रीतेशजी कोठारी आदि विद्वानों के प्रवचनों एवं कक्षाओं का लाभ मिला।

शिविर में प्रतिदिन नित्यनियम पूजन एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम भी हुये। इस अवसर पर गुणस्थान विवेचन, बालबोध पाठमाला भाग 2-3, वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग 2-3 विषयों पर कक्षायें लगीं, जिनमें अनेक विद्यार्थियों ने लाभ लिया।

(4) सनावद (म.प्र.) : यहाँ श्री कवरचंद ज्ञानचंद पारमार्थिक ट्रस्ट एवं मुमुक्षु मण्डल के तत्त्वावधान में श्री सीमंधर समवशरण मंदिर में श्रुतपंचमी पर्व एवं जिनमंदिर के वार्षिक महोत्सव के अवसर पर दिनांक 10 से 14 जून तक श्री पंच बालयति विधान एवं बाल संस्कार व महिला शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर पण्डित राजेन्द्रकुमारजी जबलपुर, पण्डित तेजकुमारजी गंगवाल इन्दौर, पण्डित रीतेशजी शास्त्री सनावद, विदुषी राजकुमारीबेन दिल्ली आदि विद्वानों के प्रवचनों व कक्षाओं का लाभ मिला।

शिविर का उद्घाटन श्री दरियावचंदजी एवं डॉ. सुभाषजी जैन खंडवा द्वारा किया गया।

शिविर में खंडवा, बडवाह, महेश्वर, खरगोन, इन्दौर, बैडीयाव आदि स्थानों से लगभग 200 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित कांतिकुमारजी इन्दौर, पण्डित अशोकजी उज्जैन व पण्डित रमेशचंदजी गायक इन्दौर द्वारा संपन्न हुये।

महोत्सव के निर्देशक पण्डित जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली थे।

(5) बीना (म.प्र.) : यहाँ श्री महावीर दिगम्बर जैन मन्दिर 'चेतनधाम' में दिनांक 6 से 10 जून तक वनिता बोधिनी शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर ब्र. प्रज्ञा दीदी दिल्ली एवं ब्र. प्रीति दीदी खनियांधाना द्वारा छहढाला एवं चार अभाव विषय पर कक्षाओं का लाभ प्राप्त हुआ।

इस शिविर में अनेक महिलाओं ने धर्मलाभ लिया।

(6) अशोकनगर (म.प्र.) : यहाँ महावीर कॉलोनी स्थित श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द स्वाध्याय मंदिर में वात्सल्य प्रभावना मण्डल के तत्त्वावधान में ग्रीष्मकालीन अवकाश के अवसर पर दिनांक 15 से 22 जून तक बाल संस्कार शिक्षण शिविर आयोजित किया गया।

इस अवसर पर पण्डित टोडरमल दि.जैन सिद्धांत महाविद्यालय से पण्डित हर्षितजी शास्त्री व पण्डित चर्चितजी शास्त्री, आचार्य अकलंकदेव सिद्धांत महाविद्यालय ध्रुवधाम से पण्डित संजयजी शास्त्री व पण्डित अखलेशजी शास्त्री तथा अनेक स्थानीय विद्वानों की कक्षाओं का लाभ प्राप्त हुआ। प्रतिदिन सांस्कृतिक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया गया।

इस शिविर में गुणस्थान विवेचन, इष्टोपदेश, बालबोध पाठमाला भाग 1-2-3, लघुजैन सिद्धांत प्रवेशिका आदि विषयों की कक्षाओं का लगभग 150 बच्चों व साधर्मियों ने लाभ लिया।

संपूर्ण शिविर का संचालन व निर्देशन श्री मयंक कुमार जैन मंगलायतन विश्वविद्यालय द्वारा किया गया।

(7) बण्डा-सागर (म.प्र.) : यहाँ कुन्दकुन्द प्रवचन प्रसारण संस्थान एवं मुमुक्षु मण्डल पिड़ावा द्वारा दिनांक 25 मई से 2 जून तक बाल संस्कार शिक्षण शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर बण्डा के अनेक बालकों ने प्रवचन व कक्षाओं के माध्यम से जैनधर्म के संस्कार ग्रहण किये।

शिविर का संचालन पण्डित सौरभजी शास्त्री भिण्ड द्वारा किया गया।

(8) सेमरखेड़ी-विदिशा (म.प्र.) : यहाँ श्री तारण तरण दिगम्बर जैन अतिशय तीर्थक्षेत्र निसईजी में दिनांक 4 से 11 जून तक बाल संस्कार शिविर का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर ब्र.शांतानन्दजी, ब्र.मुक्तानंदजी, ब्र.सुधाबेन, पण्डित आकेशजी शास्त्री, पण्डित सुमितजी शास्त्री, पण्डित अविनाशजी शास्त्री, पण्डित अक्षयजी शास्त्री, पण्डित शुभमजी शास्त्री आदि विद्वानों का सानिध्य व मार्गदर्शन प्राप्त हुआ।

शिविर में लगभग 175 बालकों सहित 200 साधर्मियों ने लाभ लिया। इस अवसर पर प्रात: चार कक्षायें व प्रवचन, दोपहर में तीन प्रवचन व चार कक्षायें एवं रात्रि में भक्ति, सामूहिक शिक्षण व सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। **- प्रदीप कुमार कुण्डा**

कनाडा में शिक्षण शिविर संपन्न

टोरंटो (कनाडा) : यहाँ जैन अध्यात्म अकेडमी ऑफ नॉर्थ अमेरिका **(JAANA)** के तत्त्वावधान में दिनांक 3 से 5 जुलाई तक त्रिदिवसीय शिक्षण शिविर संपन्न हुआ।

इस अवसर पर अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल द्वारा प्रवचनसार की गाथा 99 पर प्रवचनों के अतिरिक्त डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी द्वारा स्वपरप्रकाशक, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली द्वारा समयसार गाथा 320, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा नैगमादि सप्त नय विषय पर मार्मिक प्रवचनों का लाभ उपस्थित जनसमुदाय को मिला।

शिविर में लगभग 100-125 लोगों ने प्रतिदिन 7-7 घंटे प्रवचनों का लाभ लिया।

ब्रेम्पटन (कनाडा) में –

पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सानंद संपन्न

ब्रेम्पटन (कनाडा) : यहाँ श्री एस.एस. जैन फाउण्डेशन ब्रेम्पटन द्वारा आयोजित एवं तीर्थधाम मंगलायतन के तत्त्वावधान में श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव दिनांक 6 से 13 जुलाई तक सानन्द संपन्न हुआ।

महोत्सव में गुरुदेवश्री के प्रवचनों के अतिरिक्त अन्तरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल जयपुर, डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, ब्र. हेमन्तभाई गाँधी सोनगढ, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी आगरा, पण्डित देवेन्द्रजी मंगलायतन, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, डॉ. किरीटभाई अमेरिका, पण्डित अशोकजी लुहाड़िया मंगलायतन, पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, पण्डित आलोकजी कारंजा, पण्डित ऋषभजी छिन्दवाड़ा, पण्डित मनीषजी पिड़ावा आदि विद्वानों के प्रवचनों व गोष्ठी के माध्यम से लाभ मिला।

इस अवसर पर भगवान के माता-पिता बनने का सौभाग्य श्री सुभाष-भानुबेन कनाडा को, सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी बनने का सौभाग्य जिनमंदिर के निर्माणकर्ता श्री ज्ञानचन्द-कंचनबेन कनाडा को प्राप्त हुआ। ध्वजारोहण श्री ज्ञानचन्दजी के पौत्र रोहण नीयान द्वारा, अयोध्या नगर पाण्डाल का उद्घाटन श्री निरंजन अनिलभाई शिकागो परिवार द्वारा, मंच का उद्घाटन श्री मुकुन्दभाई खारा के पुत्र अतुलभाई चारुबेन खारा अमेरिका द्वारा एवं यागमण्डल का उद्घाटन डॉ. महेन्द्रजी जैन पद्मा जैन अमेरिका द्वारा किया गया। आहारदान का सौभाग्य श्री शान्तिलाल रतिलालजी शाह परिवार एवं अनन्तराय अमोलकजी सेठ परिवार तथा पण्डित कैलाशचन्द पवनकुमारजी जैन परिवार अलीगढ को प्राप्त हुआ।

महोत्सव के दौरान तीन गोष्ठियों का आयोजन हुआ, जिसमें प्रथम गोष्ठी **जैनधर्म की वर्तमान में उपयोगिता** विषय पर हुई, जिसकी अध्यक्षता डॉ. भारिल्ल ने एवं संचालन पण्डित वीरेन्द्रजी आगरा ने किया। द्वितीय गोष्ठी आध्यात्मिकसत्पुरुष श्रीकानजीस्वामी की 125वीं जन्मजयन्ती के उपलक्ष्य में उनके **जीवन परिचय** पर गोष्ठी रखी गई, जिसकी अध्यक्षता डॉ. भारिल्ल ने एवं संचालन पण्डित देवेन्द्रजी मंगलायतन ने किया। तृतीय गोष्ठी **मुमुक्षु की पात्रता** विषय पर गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसकी अध्यक्षता डॉ. उत्तमचंदजी ने एवं संचालन पण्डित वीरेन्द्रजी ने किया।

पञ्चकल्याणक की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा-विधि प्रतिष्ठाचार्य ब्र. हेमन्तभाई गांधी द्वारा पण्डित ऋषभजी शास्त्री छिन्दवाड़ा व पण्डित मनीषजी शास्त्री पिड़ावा द्वारा, इन्द्रसभा-राजसभा का संचालन पण्डित संजयजी शास्त्री मंगलायतन, मंच संचालन पण्डित वीरेन्द्रजी आगरा द्वारा पण्डित अशोकजी लुहाड़िया के निर्देशन में संपन्न हुई।

दशलक्षण हेतु अपनी स्वीकृति तत्काल भेजें

टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा दशलक्षण पर्व पर प्रवचनार्थ जाने वाले विद्वानों से अनुरोध है कि यदि उन्होंने अपनी स्वीकृति अभी तक नहीं भेजी है तो तत्काल जयपुर कार्यालय को पत्र/फोन/ई-मेल द्वारा भेजें।

यद्यपि सभी विद्वानों को जयपुर कार्यालय से अनुरोध पत्र भेजे गए हैं, परन्तु यदि डाक की गड़बड़ी से समय पर न मिले हो तो भी अपनी स्वीकृति हमें शीघ्र नोट करा देवें। **– मंत्री**

स्वीकृति भेजने का पता – **दशलक्षण पर्व व्यवस्था विभाग,**
ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज.) 302015
फोन नं.-0141-2705581, 2707458,
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com

अखिल बंसल ऋषभदेव पुरस्कार से सम्मानित

गाजियाबाद : यहाँ दिगम्बर जैनतीर्थ ऋषभांचल में दिनांक 26 मई को 18वें ऋषभदेव पुरस्कार समर्पण समारोह के अवसर पर श्री अखिलजी बंसल को ऋषभदेव पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पुरस्कार के रूप में उन्हें प्रशस्ति-पत्र, शॉल एवं 21 हजार रुपये की राशि प्रदान की गई। श्री जीवेन्द्र जैन द्वारा अखिलजी बंसल का परिचय प्रस्तुत किया गया एवं ऋषभांचल ट्रस्ट के पदाधिकारियों द्वारा श्री बंसलजी को सम्मानित किया गया।

आगामी कार्यक्रम...

देवलाली में दिनांक 25 से 29 अक्टूबर 2014 तक मोना **(MONA)** द्वारा अन्तरराष्ट्रीय शिविर का आयोजन किया जा रहा है, जिसमें डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी, पण्डित अभयकुमारजी देवलाली, श्री चेतनभाई मेहता आदि विद्वानों का लाभ प्राप्त होगा।

सभी साधर्मीजन लाभ लेने हेतु सादर आमंत्रित हैं।

हार्दिक बधाई !

सौ. परिणति (सुपुत्री-शान्तिकुमार पाटील, जयपुर) एवं डॉ. मोहित (सुपुत्र-डॉ. एम.एल. जैन, विदिशा) के विवाहोपलक्ष्य में जैनपथप्रदर्शक एवं वीतराग-विज्ञान हेतु 1100/- रुपये प्राप्त हुये। हार्दिक बधाई !

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें –
वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph.: 022-26130820, 26104912, E-Mail- info@vitragvani.com

ब्र. यशपालजी द्वारा तत्त्वप्रचार

1. दिनांक 5 जून को विश्वास नगर-दिल्ली के मंदिर में गुणस्थान विषय पर चर्चा चली, जिसके परिणामस्वरूप सभी साधर्मियों ने भविष्य में भी गुणस्थान विषय पढाने हेतु आग्रहपूर्वक निमंत्रित किया।

2. ललितपुर (उ.प्र.) : यहाँ दिनांक 6 से 10 जून तक प्रतिदिन दोनों समय गुणस्थान विषय पर कक्षाओं का आयोजन किया गया, साथ ही शंका समाधान भी हुये।

3. दिनांक 12 जून को कोहेफिजा-भोपाल के दिगम्बर जैन मंदिर में एक प्रवचन हुआ और सायंकाल ललवानी प्रेस रोड स्थित स्वाध्याय भवन में एक प्रवचन हुआ।

4. बेलगांव (कर्ना.) : यहाँ शहापुर हुलबत्ते कोंलनी के शुद्धात्मसदन में दिनांक 13 से 18 जून तक मुमुक्षु मण्डल में प्रथम गुणस्थान से लेकर छठवें गुणस्थान पर्यंत विषय पर कक्षाओं का आयोजन हुआ।

5. दिनांक 19 जून की रात्रि में सांगली (महा.) मुमुक्षु मण्डल में कर्म विषय पर प्रवचन हुआ।

6. दिनांक 20 जून को दोपहर में आपकी जन्मभूमि नांद्रे-सांगली (महा.) में कर्म विषय पर प्रवचन एवं शंका समाधान हुये तथा ग्रामवासियों ने आपका भावभीना सत्कार किया। प्रवचन और सत्कार-समारोह का आयोजन ब्र. सुलोचना पाटील तथा ब्र. यशपालजी के बालसखा श्रीधर पाटील के ज्येष्ठ पुत्र प्रकाश पाटील ने किया। समाज में विशेष उत्साह एवं आनन्द था। सांगली में रात्रि को सर्वोदय समिति की मीटिंग हुई, जिसमें सांगली-कोल्हापुर विभाग में तत्त्वप्रचार के कार्य की प्रेरणा दी। **– महावीर पाटील, सांगली**

7. मलाड (वे.)-मुम्बई : यहाँ एवरशाइन नगर के दिगम्बर जैन मंदिर में दिनांक 22 से 29 जून तक प्रथम से छठवें गुणस्थान पर्यंत विषय पर प्रवचन हुये। इससे प्रभावित होकर साधर्मियों ने पुन: आने का निमंत्रण दिया। **– विपिन शास्त्री, मुम्बई**

आगामी कार्यक्रम...

तत्त्वार्थमणिप्रदीप पर विशेष कक्षा

तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ पर **डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल** द्वारा लिखी गई टीका **तत्त्वार्थमणिप्रदीप** पर देवलाली में **पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री** द्वारा 25 जुलाई से 20 अगस्त तक विशेष कक्षा का आयोजन होने जा रहा है। इसमें लाभ लेने हेतु देवलाली पधारने का आमंत्रण है। आने वाले महानुभावों को नि:शुल्क आवास एवं सशुल्क भोजन की सुविधा रहेगी। अपने आने की पूर्व सूचना अवश्य दें।

शिलान्यास महोत्सव संपन्न

उदयपुर (राज.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान शाश्वत पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा संचालित जैनबालिका संस्कार संस्थान के संचालन हेतु 'संस्कार तीर्थ शाश्वत धाम' नामक संकुल की स्थापना की जा रही है, अत: दिनांक 28 व 29 जून को रत्नत्रय विधान व 9 भव्य भवनों के शिलान्यास संपन्न हुये।

इस अवसर पर गुरुदेवश्री के सी.डी. प्रवचनों के अतिरिक्त पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली व पण्डित रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर के प्रवचनों का लाभ प्राप्त हुआ।

दिनांक 29 जून को कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री अजितप्रसादजी दिल्ली ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री निहालचंदजी जैन जयपुर एवं विशिष्ट अतिथि के रूप में श्री आई.एस. जैन मुम्बई, श्री लक्ष्मीचंद गांधी सोनासण, श्री महीपालजी ज्ञायक बांसवाड़ा, श्री चन्द्रभानजी जैन, श्री विनोदकुमारजी डेवडिया, श्री प्रमोदकुमारजी मस्ताईं सिद्धायतन, डॉ. महेशजी जैन भोपाल, श्री कान्तिलालजी बड़जात्या रतलाम उपस्थित थे। साथ ही विद्वानों में पण्डित अभयकुमारजी देवलाली, पण्डित रजनीभाई दोशी हिम्मतनगर, पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर, पण्डित रतनचंदजी कोटा, पण्डित जिनेन्द्रजी शास्त्री उदयपुर, पण्डित निलयजी शास्त्री आगरा, पण्डित आशीषजी शास्त्री टीकमगढ उपस्थित थे। कार्यक्रम का मंगलाचरण जैन बालिका संस्कार संस्थान की बालिकाओं द्वारा किया गया।

विधि-विधान के समस्त कार्य पण्डित अजितकुमारजी शास्त्री अलवर, पण्डित अंकितजी शास्त्री लूणदा, पण्डित तपिशजी शास्त्री, पण्डित संदीपजी शास्त्री, पण्डित अंकुरजी शास्त्री, पण्डित संजयजी शास्त्री द्वारा संपन्न हुये।

समयसार परमागम विधान संपन्न

मुम्बई : यहाँ माटुंगा में श्री माटुंगा गुजराती सेवा मण्डल के विशाल हॉल में दिनांक 25 मई से 2 जून तक श्री समयसार परमागम मण्डल विधान का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर डॉ. मुकेशजी शास्त्री 'तन्मय' विदिशा एवं विदुषी बासंतीबेन शाह मुम्बई का सानिध्य प्राप्त हुआ।

दिनांक 25 मई को श्री अनंतनाथ स्वामी का जन्म-तप कल्याणक, दिनांक 27 मई को शांतिनाथ स्वामी का जन्म-तप-मोक्ष कल्याणक, दिनांक 28 मई को अजितनाथ स्वामी का गर्भ कल्याणक, दिनांक 1 जून को धर्मनाथ स्वामी का मोक्ष कल्याणक एवं दिनांक 2 जून को श्रुतपंचमी का कार्यक्रम बहुत हर्षोल्लासपूर्वक मनाया गया।

इस अवसर पर लगभग 200-250 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया।

विधि-विधान के कार्य डॉ.मुकेशजी तन्मय द्वारा किये गये।

टोडरमल महाविद्यालय का सुयश

(1) श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय की स्नातक **श्रीमती परिणति जैन** (सुपुत्री पण्डित शान्तिकुमार पाटील, जयपुर) ने जगद्गुरु रामानन्दाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित आचार्य (जैनदर्शन) परीक्षा-2013 की वरीयता सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त **पण्डित संजयकुमारजी शाह** सुपुत्र श्री बादामीलालजी शाह ने आचार्य (प्राकृत जैनागम) परीक्षा-2013 की वरीयता सूची में प्रथम स्थान प्राप्त किया।

(2) टोडरमल महाविद्यालय के छात्र मयंक ठगन (शास्त्री तृतीयवर्ष) ने **प्राचीन धर्म : जैनधर्म** विषय पर इन्दौर में हुये सेमिनार में अपने विषय **क्या जैनधर्म हिन्दूधर्म की शाखा है ?** पर वक्तव्य में प्रथम स्थान प्राप्त किया, जिसमें पुरस्कार राशि के रूप में 15 हजार रु की राशि प्रदान की जायेगी। इस सेमिनार में 501 वक्ताओं ने भाग लिया था।

इस उपलब्धि हेतु जैनपथप्रदर्शक एवं टोडरमल महाविद्यालय परिवार की ओर से हार्दिक बधाई !

दशलक्षण पर्व हेतु आमंत्रण शीघ्र भेजें

दशलक्षण महापर्व के अवसर पर प्रवचनार्थ विद्वानों को बुलाने हेतु पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट को आमंत्रण-पत्र समाज/मंदिर/संस्था के लेटर पेड पर शीघ्र भेजें; ताकि समय रहते उचित व्यवस्था की जा सके।

पत्र में अपना पूर्ण पता (पिनकोड सहित) एवं फोन नं. (एस.टी.डी. कोड सहित) भेजें एवं तत्काल संपर्क की सुविधा हेतु ई-मेल आई.डी. हो तो अवश्य भेज देवें।

अनेक बार समाज द्वारा दशलक्षण पर्व के अवसर पर प्रवचन हेतु विद्वानों को अपने यहाँ बुलाने का आमंत्रण अन्तिम समय पर प्राप्त होता है, जिससे व्यवस्था करने में कठिनाई होती है; अत: समाज/मंदिर के व्यवस्थापकों से निवेदन है कि वे अपने यहाँ से आमंत्रण-पत्र तत्काल भिजवायें। इसके अतिरिक्त विद्वत्गण भी अपनी स्वीकृति शीघ्र ही भेजें। **- मंत्री**

पत्राचार का पता - **दशलक्षण पर्व व्यवस्था विभाग,**
ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-4, बापूनगर, जयपुर (राज.) 302015
फोन नं.-0141-2705581, 2707458, फैक्स - 0141-2704127
E-mail : ptstjaipur@yahoo.com